शहरों की
छत्तीसगढ़ का पहला मिड-डे अखबार
जनता से रिश्ता

कैबिनेट कमेटी ऑन सिक्योरिटी एक और विषय है जिसके बारे में पावर कॉरिडोर में सबसे ज्यादा चर्चा की जाने वाली है। इसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि मोदी सरकार 2 के दौर में राष्ट्रीय सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। इसके पैनल में हमेशा सरकार के शीर्ष चार लोग शामिल होते हैं, और नए विदेश मंत्री एस जयशंकर इसका एक हिस्सा हैं। डोभाल की पदोन्नति कैबिनेट रैंक के रूप में हो गई है। अधिकारियों का अनुमान है, उन्हें केवल जयशंकर की बराबरी पर लाना था, क्योंकि यह महसूस किया गया था कि दोनों के बीच निरंतर तुलना की जाएगी।

'जयश्री राम' के नारे पर जय-पराजय की राजनीति

विष्णु गुप्त

कुछ नारे कालजयी होते हैं, जिनका संबंध परिवर्तन से होता है, क्रांति से होता है। नारों का संबंध आस्था से भी होता है, रूढ़ियों और अंधविश्वासों को तोडने से होता है। नारों से जन संवेदनाएं भी आंदोलित होती हैं। देश-दुनिया में बहुत से नारे इतिहास बन गए हैं, परिवर्तन और क्रांति के प्रतीक बने हैं, जिनके प्रति जनसमुदाय का समर्पण भाव जुड़ा होता है। हमारे देश में ऐसे लोकप्रिय नारों का लम्बा-चौड़ा इतिहास रहा है।

सुभाष चन्द्र बोस ने 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा' का नारा दिया था। हालांकि इनकी आजाद ड्क्षहद फौज आजादी नहीं दिला पाई थी, फिर भी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के इस नारे ने विदेशी सरकार के दांत खट्टे कर दिए थे। हिटलर की पराजय नहीं होती, अमरीका ने नागासाकी और हीरोशिमा पर परमाणु बम बरसा कर विध्वंस नहीं किया होता तो फिर आजाद ड्क्षहद फौज देश को आजाद भी करा सकती थी। 1942 में महात्मा गांधी ने 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा दिया था। पूरा देश महात्मा गांधी के इस नारे के साथ आंदोलित था, जेल जाने या फिर गोलियां खाने से डर नहीं था। इसके पूर्व भी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 'आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा दिया था। तिलक के इस नारे ने अंग्रेजी सरकार की नींव हिलाने का काम किया था। आजाद भारत में भी कई ऐसे नारे अस्तित्व में रहे हैं जिन्होंने देश के जनमानस पर न केवल छाप छोड़ी थी बल्कि देश के स्वाभिमान को भी जगाया था। खासकर लाल बहादुर शास्त्री का 'जय जवान, जय किसान' का नारा। यह सही बात है कि वही नारे इतिहास बनाते हैं, कालजयी बन जाते हैं जिनके पीछे कोई व्यक्तिगत स्वार्थ जुड़ा नहीं होता है, बल्कि उसके पीछे जन-संवेदनाएं होती हैं, जनहित होता है, परिवर्तन और क्रांति होती है।

विरोध और पक्ष में तर्क : वर्तमान में 'जयश्री राम' का नारा और उद्बोधन राजनीति के केन्द्रीय विचार के केन्द्र में आ गया है। इसे लेकर विस्फोटक राजनीति भी शुरू हो गई है। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि इसे जय-पराजय की राजनीति भी मान लिया गया है। वैसे तो यह नारा राममंदिर आंदोलन से ही राजनीति को प्रभावित कर रहा है, खासकर सत्ता राजनीति में केन्द्रीय भूमिका निभा रहा है। विरोधी शक्तियां कहती हैं कि जयश्री राम के नारे के साथ धार्मिक भावनाएं जुड़ती हैं, जो विध्वंसकारी होती हैं, इसलिए इस तरह के नारे बंद होने चाहिएं। वहीं समर्थक धाराएं जयश्री राम के नारे को अपनी संस्कृति के उन्नयन के साथ जोड़ती हैं, देश के स्वाभिमान के साथ जोड़ती हैं। ऐसी धाराएं कहती हैं कि हमारी संस्कृति के विध्वंस को लेकर कोई एक नहीं, बल्कि सैंकड़ों नारे सक्रिय रहे हैं, जिन्हें कांग्रेस और वामपंथी सक्रिय रखे हैं पर उन पर कोई अपमानजनक या फिर कटाक्षपूर्ण टिप्पणियां नहीं होती हैं, सिर्फ हमारे स्वाभिमान के प्रतीक नारे पर ही इतनी हाय-तौबा क्यों मचती है। हाय-तौबा मचाने वाली राजनीति तुष्टीकरण का कैसा खेल खेलती है, तथाकथित अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के प्रति कैसे असहिष्णुतापूर्ण भाव रखने के लिए उकसाया जाता है, यह भी देश की राजनीति में जगजाहिर है। कोई कहता है कि देश के संसाधनों पर पहला अधिकार मुसलमानों का है तो कोई कहता है कि कहीं दंगा हुआ तो फिर प्रताड़ित होने के बावजूद हिन्दुओं को ही अपराधी माना जाएगा? बहुसंख्यक भावना यह है कि राजनीतिक तुष्टीकरण का जवाब जयश्री राम की बहुसंख्यक जन संवेदनाएं हैं।

ममता की नींद उड़ाई : खासकर पश्चिम बंगाल में उठ रही 'जयश्री राम' की बहुसंख्यक जन संवेदना से ममता बनर्जी कैसे भड़की हैं, इस नारे ने ममता बनर्जी की कैसे नींद उड़ाई है और गुस्से में वह कैसी भाषा बोल रही हैं, यह भी जगजाहिर हो चुका है। ममता बनर्जी यह कह रही हैं कि जयश्री राम के नारे के साथ भाजपा नफरत फैला रही है। राजनीति में क्रिया की विपरीत प्रतिक्रिया होती है, हथकंडे के खिलाफ हथकंडा होता है। यह सही है कि भाजपा ने ममता बनर्जी की सत्ता को उखाड़ फैंकने के लिए जयश्री राम का नारा दिया है, जिससे वह यह प्रदर्शित कर रही है कि ममता बनर्जी पश्चिम बंगाल के हिन्दुओं के साथ नाइंसाफी, भेदभाव कर रही हैं। हिन्दुओं को दोयम दर्जे का नागरिक बना कर रख छोड़ा है। यह भी सही है कि राजनीतिक हथकंडे की कसौटी पर ममता बनर्जी भी दूध की धुली नहीं हैं, वह भी खुलेआम मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति पर सवार रही हैं, जो उनका सत्ता सूत्र है। हिन्दू त्यौहारों पर ममता बनर्जी ने कैंची चलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। मुस्लिम तुष्टीकरण का खेल राष्ट्र की भावनाओं को आहत कर रहा है। खासकर पश्चिम बंगाल में रोड्क्षहग्या मुसलमानों और बंगलादेशी मुसलमानों की खुलेआम घुसपैठ को संरक्षण देना और रोड्क्षहग्या-बंगलादेशी मुसलमानों को नागरिकता कार्ड देकर देश के नागरिक की हर सुविधाएं उपलब्ध कराने की सत्ता राजनीति चरम पर है। ऐसे में बहुसंख्यक वर्ग की भावनाओं का प्रकटीकरण भी स्वाभाविक है। जयश्री राम की बहुसंख्यक भावनाओं का प्रकटीकरण लोकसभा चुनावों में साफ देखा गया। भाजपा, जो पश्चिम बंगाल में कोई खास प्रभाव नहीं रखती थी, आज सत्ता के दावेदार के रूप में खड़ी है। इस लोकसभा चुनाव में 42 में से 18 सीटें जीत कर भाजपा ने ममता बनर्जी की नींद उड़ा डाली है। ममता बनर्जी को देखते ही बहुंसख्यक लोग जय श्री राम के नारे लगा रहे हैं और वह नारे लगाने वालों को बाहरी यानी कि पश्चिम बंगाल से बाहर के तत्व बता रही हैं और जेल भिजवाने की धमकियां दे रही हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि जय श्री राम का नारा लगाने वाले सैंकड़ों लोगों को जेल भिजवा भी चुकी हैं, उन पर गंभीर किस्म के मुकद्मे भी लादे गए हैं। रोड्क्षहग्या-बंगलादेशी घुसपैठियों के खिलाफ एक शब्द नहीं बोलने वाली ममता बनर्जी देश के नागरिकों को ही बाहरी तत्व बता रही हैं। ऐसे में बहुसंख्यक जन भावनाएं उनकी विरोधी होकर नुक्सानदेह ही बनेंगी।

उत्तर प्रदेश की भूमिका : 1990 के दशक में ऐसा ही खेल उत्तर प्रदेश में खेला गया था, जहां पर जयश्री राम का नारा लगाने वाले लोगों को कांग्रेस और समाजवादी पार्टी जैसे सैक्युलर दलों के कोपभाजन का शिकार बनना पड़ता था। दुष्परिणाम यह हुआ कि उत्तर प्रदेश में पहली बार भाजपा की सरकार बनी थी, कल्याण सिंह मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठे थे। आज भी भाजपा केन्द्र में जो सत्तासीन है, उसके पीछे उत्तर प्रदेश की राजनीतिक शक्ति बड़ी भूमिका निभा रही है। वर्तमान स्थिति यह है कि बहुसंख्यक वर्ग भी अपने हित और अपने स्वाभिमान के प्रति सचेत, गंभीर और सक्रियतापूर्ण आंदोलनकारी हो गए हैं, इन्हें अब तुष्टीकरण करने वाले सैक्युलर दलों से नाराजगी है। इसी का प्रकटीकरण अभी-अभी लोकसभा चुनाव का परिणाम है, नरेन्द्र मोदी फिर से अपार बहुमत के साथ सत्ता में लौटे हैं। उनकी जीत को देशभक्ति की जीत, देश के बहुसंख्यक जनभावनाओं की जीत माना जा रहा है। राम तो भारतीय संस्कृति के आराध्य हैं।

महात्मा गांधी भी भगवान राम की स्तुति करते थे। सबसे बड़ी बात डा. राम मनोहर लोहिया का भगवान राम दर्शन है। लोहिया भगवान राम के जीवन पर आधारित 'राम मेला' का आयोजन करते थे, जिसमें देश भर से समाजवादी धारा के लोग एकत्रित होते थे। ममता बनर्जी ही क्यों, बल्कि देश की सभी सैक्युलर राजनीतिक पार्टियों को आत्ममंथन करना चाहिए कि आखिर क्यों बहुसंख्यक जनभावनाएं आहत हैं? बहुसंख्यक जनभावनाएं आखिर क्यों अपने हित और अपने स्वाभिमान के लिए 'जयश्री राम' के नारे के शरण में गई हैं?

काम के लंबे घंटे और वर्किंग हॉलिडे, अलग है अमित शाह का गृह मंत्रालय

नीता शर्मा

दिल्ली में नॉर्थ ब्लॉक में स्थित गृह मंत्रालय में काम के घंटे बढ़ गए हैं. ऐसा इसलिए नहीं हुआ कि गर्मी के दिन काफी लंबे होते हैं, बल्कि इसकी वजह गृह मंत्री की बहुत ज्यादा काम करने की प्रवृति है. अमित शाह सोमवार, मंगलवार और बुधवार को सुबह 10 बजे से पहले ही अपने कार्यालय पहुंच गए। गुरुवार को भी वे सुबह 9।40 बजे पहुंचे और देर तक रुके। मैं बीते एक दशक से गृह मंत्रालय को कवर कर रही हूं और चार गृह मंत्रियों को देखा है। अमित शाह ऐसे पहले गृह मंत्री हैं जो अपना पूरा दिन ऑफिस में बिताने हैं और रात 8 बजे के बाद निकलते हैं। नतीजा यह है कि सिर्फ अधिकारी ही नहीं, यहां तक कि दो गृह राज्यमंत्री भी

लंबे समय तक काम करते हैं। अपने पूर्ववर्ती राजनाथ सिंह के विपरीत गृह मंत्री दोपहर के भोजन के लिए भी घर नहीं जाते हैं। उनके लिए दोपहर का खाना 12।45 बजे तक पूरी सफाई के साथ पैक की गई टोकरी में आ जाता है। यहां तक कि मंगलवार को ईद के मौके पर भी अमित शाह काम करते दिखे। उन्हें देखते हुए उनके दो डिप्टी और काफी सीनियर अफसर भला कैसे इस दिन को छुट्टी का दिन मान लेते।

उनके एक जूनियर मंत्री ने कहा कि यदि वरिष्ठ मंत्री आफिस में हों तो हमें आसपास ही रहना होता है। और यह तो सिर्फ शुरुआत है, क्योंकि वे अक्सर देर तक काम करते हैं और यह उनकी आदत में है।% कई बीजेपी नेता कहते हैं कि वे सोने से पहले अपने बिस्तर पर पेन और कागज रख लेते हैं, पता नहीं कब अमित शाह का फोन आ जाए। यह पार्टी अध्यक्ष की आदत में शामिल है, देर रात में फोन कर देना और काम सौंपने के साथ उसकी डेडलाइन भी तय कर देना। एक राज्यमंत्री ने मुस्कुराते हुए कहा कि %हमारे मंत्री तो 80 समितियों का संचालन देखते रहे हैं, अब तो यहां सिर्फ आठ हैं।% अब अधिकारी देश के 30 वें गृह मंत्री के साथ तालमेल रखने की कोशिश कर रहे हैं। पूर्व गृह मंत्री राजनाथ सिंह रायसीना हिल के अपने आफिस में आधा दिन काम करने के बाद बाकी काम घर से पूरा करते थे। कई महत्वपूर्ण बैठकें, राजनीतिक बैठकें भी उनके घर पर ही होती थीं। नए गृह मंत्री की लगभग सभी बैठकें नॉर्थ ब्लॉक में ही होती हैं। गवर्नर, मुख्यमंत्री, कैबिनेट मंत्री, राज्य बीजेपी वगैरह, सबके लिए अब यह नया पता है। कई अर्धसैनिक बल प्रमुख उनसे मिल सकते हैं, लेकिन राज्य के पुलिस प्रमुख अभी भी कतार में हैं। उनसे कहा जाता है कि मंत्री %व्यस्त% हैं। ऐसा ही है निश्चित रूप से। वे अपने मंत्रालय की विभिन्न विंगों में ब्रीफिंग लेते हैं। 19 विभाग हैं और प्रत्येक को मंत्री के लिए एक प्रजेंटेशन तैयार करने के लिए कहा गया है। यह संकेत है कि अमित शाह के नेतृत्व वाला गृह मंत्रालय बड़ा पॉवर सेंटर बनेगा। वे आठ कैबिनेट कमेटियों में हैं, जबकि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का नाम छह समितियों में है। राजनाथ सिंह का नाम गुरुवार को आई पहली लिस्ट में सिर्फ दो समितियों में था। शाम को उनका नाम छह समितियों में हो गया। क्या अमित शाह वास्तव में उप प्रधानमंत्री हैं? यह विषय नौकरशाही के लिए अबूझ है। मंत्रालय के एक अधिकारी बताते हैं कि वे खुद को इस तरह से आगे बढ़ा रहे हैं कि बाबू भी महत्वपूर्ण मुद्दों को लेकर लाइन में लगे रहते हैं। कोई भी उन्हें न नहीं कहना चाहता, या एक काउंटर पॉइंट ऑफ व्यू देना चाहता है।

कुछ नौकरशाहों का कहना है कि नवोदित केंद्रीय मंत्री, जिन्हें भाजपा की अविश्वसनीय जीत का श्रेय दिया जाता है, मोदी युग 2 के उभरते हुए सितारे हैं। एक तथ्य यह भी है कि अमित शाह उन कमेटियों में भी हैं जिनका गृह मंत्रालय से कोई संबंध नहीं है। एक नई कमेटी, जो कि रोजगार और आर्थिक वृद्धि के लिए है, में उनका होना स्पष्ट उदाहरण है। सरकार में उनकी अहमियत का संकेत है।

हिंदी पर हाय-हाय छोड़िए

शशि शेखर

मेरी यादों में सितंबर 2012 की वह दोपहर जैसे नक्श हो गई है। दक्षिण अफ्रीका की व्यावसायिक राजधानी जोहानेसबर्ग में धरती के विभिन्न कोनों से आए हिंदीप्रेमी नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन के मौके पर इकट्ठा थे। इस सम्मेलन के मीडिया सत्र की अध्यक्षता करने का मौका मुझे मिला था। मुख्य अतिथि थे मणिशंकर अय्यर। उस दोपहरी अय्यर ने अपने भाषण में कहा था कि इससे अच्छा कोई दिन नहीं हो सकता, जब बिहार से तमिलनाडु के किसी गांव में गए शख्स से वहां के लोग हिंदी में पूछें, 'भाई कैसे हो?' इसी तरह, यदि कोई तमिलभाषी बिहार के किसी गांव में पहुंच जाए, तो उससे पूछा जाए, 'नींग एपड़ी इरिकेल?' अय्यर के ये विचार सुनते समय मुझे लगा था कि इस शख्स के बारे में भले ही कोई कुछ भी कहे, पर इस समय यह बिल्कुल सही बोल रहा है। जैसा कि नाम से जाहिर है, मणिशंकर अय्यर तमिल मूल के हैं। उनका जन्म लाहौर में हुआ, वह तमिल और हिंदी के साथ बेहतरीन पंजाबी तथा उर्दू भी जानते हैं। काश! अन्य हिन्दुस्तानी भी अपनी मातृभाषा के अलावा एकाधिक भारतीय भाषा की समझ रख पाते! उस समय उठी यह पुलक भरी कसक बिसरा गई होती, अगर कुछ विघ्न संतोषियों से पाला न पड़ा होता। सत्र की समाप्ति के बाद भीड़ से अचानक कुछ नौजवान उपजे और उन्होंने मुझसे पूछा कि मणिशंकर अय्यर कहां है? मुझे उनकी तैश-भरी वाणी अमर्यादित लगी। मैंने पूछा, क्या हुआ? उनमें से एक ने कहा कि यह भला कौन-सी बात हुई कि वह हिंदीभाषियों से तमिल बोलने की उम्मीद कर रहा है? मैंने फिर पूछा कि यदि तमिलभाषी हिंदी बोलें तो? उनका जवाब था, 'वह तो बोलनी ही चाहिए।' देश के हर नागरिक का कर्तव्य है कि वह हिंदी को जाने। यह हठपूर्ण रवैया हमारी हिंदी के लिए अच्छा नहीं है। भाषाएं और बोलियां उन रिश्तेदारों की तरह होती हैं, जिन्हें अपनाया जाता है। उन्हें थोपना अच्छा नहीं होता। हमारे हिन्दुस्तान ने तो आजादी से पहले ही इसका स्वाद चख लिया था। 1937 में, जब मद्रास प्रेसीडेंसी में कांग्रेस की सरकार गठित हुई, तो सी राजगोपालाचारी ने स्कूलों में हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर दी। पेरियार और तमाम तमिलवादी नेताओं ने उसका मुखर विरोध किया। आंदोलन उग्र हो चला। पुलिस को कई जगह बल प्रयोग करना पड़ा। एकाधिक व्यक्ति को जान भी गंवानी पड़ी। तब से अब तक इस प्रदेश में तमिल पार्टियां हिंदी का विरोध करती आई हैं। हमारी संसद तक इस हंगामे से अछूती नहीं रही। लंबे बहस-मुबाहिसे के बाद 1968 में 'ऑफिशियल लैंग्वेज रिजॉल्यूशन' पारित किया गया। इसके तहत हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी के साथ कोई अन्य भारतीय भाषा पढ़ाई जानी थी और अहिंदीभाषी राज्यों में स्थानीय भाषा और अंग्रेजी के साथ हिंदी का पठन-पाठन होना था। यह त्रिभाषा फॉर्मूला पूरे देश ने

अपनाया, पर तमिलनाडु अपनी जिद पर अड़ा रहा। यकीनन, भारतीयों को भारत के और अधिक नजदीक लाने के लिए यह कारगर फॉर्मूला था। 1971 में छठी कक्षा में दाखिले के वक्त मुझे भी तीन विकल्प दिए गए थे। तेलुगू, कन्नड़ या बांग्ला? उन दिनों हम इलाहाबाद के टैगोर टाउन में रहते थे, जहां बंगालियों की बहुतायत थी। मैंने बांग्ला चुनी और अगले तीन साल उसकी शुरुआती बारीकियों को समझने का अवसर हासिल किया। बरसों बाद आज ये पंक्तियां लिखते वक्त सुकून से कह सकता हूं कि इसने मुझे न केवल महान बांग्ला भाषा से परिचित कराया, बल्कि वहां के अमर साहित्य को पढ़ने की रुचि जागृत की। इस साहित्य ने किशोरावस्था में मुझे नई दृष्टि दी। मेरे जैसे हजारों किशोर थे, जो इन भाषाओं के जरिए भारत को समझ-बूझ रहे थे। अब आते हैं मौजूदा समय पर। प्रतिरोध बढ़ता देखकर केंद्र सरकार ने सफाई दे दी कि हम हिंदी को किसी पर भी थोपना नहीं चाहते। सियासत भाषाओं के मामले में हमेशा एक कदम आगे और दो कदम पीछे की नीति अपनाती रही है। इसका खामियाजा हमें भुगतना पड़ा है। हमारी पीढ़ी के हिंदीभाषी जब आंखें खोल रहे थे, तभी लोहिया ने 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन की शुरुआत की थी। तमाम लोग भावनावश अंग्रेजी का बहिष्कार कर बैठे। सुनने में अच्छा लगता था कि सोवियत संघ, चीन, फ्रांस अथवा जर्मनी ने अगर बिना अंग्रेजी के इतनी तरक्की कर ली, तो हिन्दुस्तान हिंदी के साथ आगे क्यों नहीं बढ़ सकता, पर इसका नुकसान हुआ। अल्प अंग्रेजी ज्ञान की वजह से हिंदीभाषियों को रोटी-रोजगार के कई मोर्चों पर आगे चलकर जटिलताओं का सामना करना पड़ा। ठीक वैसे ही, जैसे तमिलभाषी जब दिल्ली अथवा देश के उत्तरी या पश्चिमी हिस्सों में जाते, तो उन्हें कर्नाटक अथवा अविभाजित आंध्र के मुकाबले अधिक दिक्कत पेश आती। हम अपनी भाषा पर गर्व करें, उसे प्यार करें, यह बहुत अच्छा है, पर अगर हम अन्य भाषाओं के लिए दरवाजे बंद कर देंगे, तो ज्ञान की उम्मीदों की रोशनी भी बंद हो जाएगी। 2011 की जनगणना के आंकड़े इस मामले में आंखें खोलने वाले हैं। जारी दशक की शुरुआत में देश में हिंदी बोलने वालों की तादाद 52 करोड़ को पार कर गई थी। 2001 से 2011 के बीच इसमें करीब दस करोड़ का इजाफा हुआ था। अब अगली जनगणना 2021 में होगी, पर यह तय है कि बढ़ोतरी की रफ्तार जारी रहेगी। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि लोगों ने रोजगार के सिलसिले में अपने पुराने आग्रहों को तोड़कर नए बनते-उभरते महानगरों की ओर रुख किया है। जनगणना के पिछले आंकड़ों के अनुसार, दक्षिणी क्षेत्रों में हिंदी, उड़िया और असमिया भाषा बोलने वालों की संख्या 33 फीसदी तक बढ़ी है। जाहिर है, हैदराबाद, बेंगलुरु, चेन्नई, जैसे शहरों के वाणिज्यिक उभार के बाद देश के पूर्वी और उत्तरी लोगों की आमद में इजाफा हुआ है। भाषाओं के मामले में होने वाले अकादमिक बहस-मुबाहिसे में एक सत्य अक्सर जान-बूझकर बिसरा दिया जाता है, वह हैं बॉलीवुड की फिल्में।

मुंबई में बनने वाली हिंदी फिल्मों ने अपनी कला और आकर्षण से पूरे देश में हिंदी के प्रसार में जबरदस्त भूमिका अदा की। एक समय था, जब हम रजनीकांत, मोहन लाल, रेखा, हेमा मालिनी अथवा श्रीदेवी जैसे अभिनेता-अभिनेत्रियों को इन फिल्मों के जरिए जान सके। अब वक्त के बदलाव के साथ दक्षिण का सिनेमा भी हमारे बीच लोकप्रिय हो रहा है।

पीके से मिल कर ममता बंगाल में बीजेपी को रोकना चाहती हैं

पंकज झा

प्रशांत किशोर अब ममता बनर्जी के लिए काम करेंगे. आज उन्होंने कोलकाता में ममता से मुलाक़ात की। दो घंटे तक चली बैठक के बाद साथ साथ काम करने का फ़ैसला हुआ। बंगाल में लगातार मज़बूत हो रही बीजेपी को रोकने के लिए ममता ने प्रशांत किशोर से से संपर्क किया था। वहां दो साल बाद विधानसभा के चुनाव होने हैं। हाल में हुए लोकसभा चुनाव में ममता की पार्टी तृणमूल कांग्रेस को 22 और बीजेपी को 18 सीटें मिली थीं। चुनाव बाद दोनों पार्टियों के कार्यकर्ताओं में झगड़ों की ख़बरें लगातार आ रही हैं। पीके के नाम से मशहूर प्रशांत किशोर अब ममता दीदी को चुनावी जीत का फ़ंडा बतायेंगे। तृणमूल कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को वे बीजेपी से दो दो हाथ करने का गुरू मंत्र समझायेंगे। ममता बनर्जी से भेंट के बाद पीके ने एबीपी न्यूज़ को बताया कि अगले महीने से वे मिशन बंगाल पर काम शुरू कर देंगे। उनकी संस्था इंडियन पोलिटिकल एक्शन कमेटी इस पर होम वर्क भी करने लगी है। अगले हफ़्ते तक आईपैक के लोग बंगाल का दौरा कर ग्राउंड रिपोर्ट लेंगे। आँध्र प्रदेश में हाल में हुए विधानसभा चुनाव में जगन मोहन रेड्डी की पार्टी की शानदार जीत हुई। नतीजे के तुरंत बाद जगन और पीके के गले मिलने की फ़ोटो सोशल मीडिया में ख़ूब वायरल हुई थी। प्रशांत किशोर और उनकी टीम पिछले दो सालों से वाईएसआर कांग्रेस पार्टी के लिए काम कर रही थी। पिछले कई सालों से परदे के पीछे रह कर काम करने वाले प्रशांत किशोर अचानक एक्टिव्स पॉलिटिक्स में आ गए थे। उन्हें जनता दल यूनाइटेड पार्टी में उपाध्यक्ष बनाया गया। नौजवानों को पार्टी से जोड़ने का काम पीके ने शुरू किया। लेकिन जेडीयू के कुछ बड़े नेताओं को पीके का काम पसंद नहीं आया। प्रशांत किशोर के बढ़ते राजनैतिक ताक़त के ख़िलाफ़ पार्टी के नेता गोलबंद हो गए। अपने कुछ बयानों को लेकर भी पीके विवादों में रहे। नीतीश कुमार और उनके बीच दूरियाँ बढ़ने लगीं। नीतीश ने यह कर सबको चौका दिया कि अमित शाह के कहने पर ही उन्होंने प्रशांत को पार्टी में लिया। जेडीयू में बढ़ती तनातनी के बीच प्रशांत किशोर ने अचानक पटना छोड़ दिया। वे आँध्र प्रदेश पहुँच गए। जेडीयू अब तक उन्होंने छोड़ी नहीं है। तो क्या पार्टी में रह कर ही वे ममता बनर्जी के लिए काम करेंगे। बीजेपी की अगुवाई वाली एनडीए में जेडीयू भी है। तो फिर सवाल ये है कि क्या एनडीए में रहते हुए प्रशांत किशोर तृणमूल कांग्रेस के लिए काम करेंगे। बंगाल में बीजेपी ने ममता बनर्जी के लिए ख़तरे की घंटी

कांग्रेस की कलह रोकने जल्द बनाना होगा नया अध्यक्ष

मनोरंजन भारती

कांग्रेस से यह खबर आ रही है कि राहुल गांधी से अलग पार्टी किसी और को अध्यक्ष बनाने पर गंभीरता से विचार कर रही है और नए पार्टी अध्यक्ष की खोज भी शुरू हो गई है. कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं की माने तो पार्टी का नया अध्यक्ष गैर गांधी होगा यानी नए अध्यक्ष का गांधी परिवार से कोई लेना देना नहीं होगा। साथ ही अगले दो से तीन महीनों में इसकी घोषणा की जाएगी। राहुल गांधी फिलहाल दो दिनों के वायनाड दौरे पर हैं जहां भारी भीड़ उनके स्वागत के लिए उमड़ी थी। कईयों के हाथों में प्लेकार्ड था कि हमें आपकी जरूरत है। मगर जब तक कांग्रेस में नए अध्यक्ष को लेकर स्थिति साफ नहीं हो जाती पार्टी में भ्रम की स्थिति बनी रहेगी। कोई भी कांग्रेसी नेता चाहे वो किसी भी स्तर का क्यों ना हो या कहे आज के दिन यदि वो कांग्रेस कार्यसमिति का ही सदस्य क्यों ना हो उसे कुछ नहीं पता कि कांग्रेस में क्या चल रहा है। वजह साफ है कि लोकसभा चुनाव के नतीजे आने के बाद जब से राहुल गांधी ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दिया है वो एक या दो नेताओं के अलावा किसी से भी नहीं मिले हैं। यानी किसी को नहीं मालूम कि राहुल गांधी का अगला कदम क्या होगा या उनके मन में क्या है। यही नहीं उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए प्रियंका गांधी के नाम पर भी वीटो लगा दिया है। इन सबकी वजह से कांग्रेस फिलहाल नेता विहीन लग रही है और इसकी वजह से पार्टी के अनुशासन पर असर पड़ रहा है खासकर राज्यों में। तेलंगाना में कांग्रेस के 12 विधायक पार्टी छोड़कर टीआरएस में शामिल हो गए हैं। यानी एक तरह से पूरी पार्टी का ही टीआरएस में विलय हो गया है। उसी तरह पंजाब में कैप्टन बनाम नवजोत सिंह सिद्धू का विवाद इतना तूल पकड़ा कि कैप्टन को सिद्धू के खिलाफ कार्रवाई करते हुए उनका विभाग बदलना पड़ा। कैप्टन ने भी काफी इंतजार किया कि पार्टी आलाकमान से कोई सिग्नल मिल जाए मगर जब दिल्ली से कोई निर्देश नहीं आया तो उन्होंने खुद सिद्धू का विभाग बदल दिया। कुछ ऐसे ही हालात राजस्थान में है, जहां मुख्यमंत्री अशोक

गहलोत और उपमुख्यमंत्री सचिन पायलट के बीच मतभेद और मनभेद की खबरें रोज आती हैं। कांग्रेस आलाकमान को चाहिए था कि दोनों को आमने-सामने बिठाकर उनका झगडा सुलझाते, मगर गहलोत और पायलट अभी भी राजस्थान की सभी 25 सीट हारने का ठीकरा एक दूसरे पर फोड़ रहे हैं। हरियाणा की बात करें तो लोकसभा चुनाव में हार की समीक्षा के लिए बुलाई बैठक में इतनी तू-तू मैं-मैं हुई कि प्रदेश अध्यक्ष ने यह कहना शुरू कर दिया कि मुझे फांसी पर लटका दो, मुझे गोली मार दो वैगरह-वगैरह। यह सब कांग्रेस के वरिष्ठ नेता गुलाम नबी आजाद की मौजूदगी में हो रहा था। कनार्टक में रोज कांग्रेस के विधायक अपने ही प्रदेश सरकार के खिलाफ बयानबाजी करने से बाज नहीं आते हैं और मुख्यमंत्री कुमारस्वामी यह कहते हुए रूंआसे दिखाई देते हैं कि मुझे ठीक से काम नहीं करने दिया जा रहा है। कुछ ऐसी ही खबर गोवा से आ रही है जहां 10 के करीब कांग्रेस विधायक अपना एक अलग गुट बनाने की तैयारी में हैं और यह सब हो रहा है राहुल गांधी की निष्यक्रियता की वजह से। अब कांग्रेस के नेता और कार्यकर्ता यह पूछने लगे हैं कि आखिर कांग्रेस का अध्यक्ष अभी कौन है। यदि राहुल अध्यक्ष नहीं हैं तो नए अध्यक्ष पर जल्दी फैसला क्यों नहीं हो रहा है? लोग यह कहने लगे हैं कि या तो राहुल रहें या जाएं मगर फैसला जल्दी हो। अब कांग्रेस नेताओं पर यह दबाव बढ़ता जा रहा है कि राज्यों में कांग्रेस नेताओं की बढ़ती अनुशासनहीनता रोकने के लिए नए अध्यक्ष पर जल्द फैसला ले लिया जाए। यही वजह है कि ये खबरें आनी शुरू हो गई है कि अगले दो तीन महीने के अंदर कांग्रेस को नया गैर गांधी अध्यक्ष मिलने वाला है।